प्राक्कथन

मानव प्राणी सुख की अभिलाषी है। वह जो कुछ सोचता और कार्य करता है सुख की अभिलाषा उसमें प्रधान रहती है। मानसिक विकास के साथ यह सुखाकांक्षा का दायरा भी बढ़ता जाता है।

मनुष्य का [illegible] से अधिक कहाँ तक सोच सकता थी, उसे [illegible] कर उसने तीन कल्पना की हैं (१) अमृत (२) कल्प वृक्ष (३) पारस। मृत्यु से पीछा छुड़ाकर मनमानी अवधि तक जीने के लिए अमृत, हरएक इच्छा को तुरन्त पूरा होजाने के लिये कल्पवृक्ष और मनमानी स्वर्ण राशि जमा करने के लिये पारस की उसने चाह की है। इन तीनों से किसी का अस्तित्व यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कहीं देखा जाता तो भी इनके अस्तित्व के सम्बन्ध में अनेक गाथा और किम्वदन्तियां सुनी और पढ़ी जाती हैं।

अमृत, कल्पवृक्ष और पारस जिस रूप में बताये जाते हैं, उस रूप में कहीं है या नहीं? इसकी इन पंक्तियों के लेखक को कुछ विशेष जानकारी नहीं है, परन्तु अपने चिरकालीन अनुभव के आधार पर उसने ऐसे तत्वों का अस्तित्व पाया है, जिनको [illegible] जाने से [illegible] आनन्द तृप्ति और सन्तोष प्राप्त कर [illegible] उन तीन वस्तुओं के आधार पर [illegible] करता। सत्य-प्रेम और न्याय यह तीन तत्व हैं, जिन्हें भूलोक के अमृत, कल्पवृक्ष और पारस कह सकते हैं। इन तीन आध्यात्मिक तत्वों का अखंड ज्योति सदा से ही प्रचार और प्रसार करती चली आरही है। उस प्रचार का संकलन पुस्तक रूप में पाठकों के सामने उपस्थित कर रहे हैं। आशा है कि यह पुस्तक मानव जाति की सात्विकता को बढ़ाने में सहायक होगी।

—श्रीराम शर्मा.

अमृत की प्राप्ति

मनुष्य की सब से प्रिय वस्तु [illegible] जीवन है। जब जीवन नष्ट होने की घड़ी आती है तो वह उसके बदले में बड़ी से बड़ी वस्तु देने को तैयार हो जाता है। चाहे कोई कैसी भी दीन हीन दशा में क्यों न हो परन्तु यदि मृत्यु का भय उसके सामने उपस्थित हो तो वह उससे बचने का उपाय करता है। कहते हैं कि एक लकड़हारा जङ्गल से लकड़ियां इकट्ठी कर रहा था। उसके शिर में फोड़े थे, शरीर बीमार था, गट्ठा भारी था, इतनी लकड़ियां उसे दूर के गांव से शिर पर रख कर बेचने को ले जानी थीं, बिना इनके गुजारा नहीं था। जब लकड़हारा गट्ठा बांध चुका तो उसने एक लम्बी सांस ली और कहा — अच्छा था कि इस दुःख की बजाय मुझे मौत आ जाती। लकड़हारे का इतना कहना था कि झट से मौत उसके सामने आकर खड़ी होगई और कहने लगी — कहो भाई! तुमने मुझे क्यों बुलाया है? जो कहो सो [illegible] करने को तैयार हूँ। मृत्यु को देखकर लकड़हारे के होश [illegible] गये। उसने गिड़गिड़ाकर कहा — देवी जी, आप का आवाहन मैंने इसलिए किया है कि लकड़ियों का गट्ठा भारी है, यहां उठाने वाला कोई है नहीं, इसलिए आप से प्रार्थना है कि इस गट्ठे को उठाने में कुछ सहारा लगाएँ जिससे इसे शिर पर रखकर अपने गांव को चला जाऊँ।" मृत्यु ने उसका गट्ठा उठवा दिया और मन ही मन मुसकराती हुई अन्तर्धान होगई।

यह कथा एक महान् सत्य पर थोड़ा सा प्रकाश डालती है। हर आदमी अपने जीवन से इतना प्यार करता है जितना और किसी वस्तु से नहीं करता। इसीलिए मनुष्य अतीत काल से यह इच्छा करता चला आया है कि मैं अधिक दिन जिऊँ, मृत्यु से बचा रहूँ, अमर जीवन का उपभोग करूँ। इस इच्छा ने उससे एक ऐसे पदार्थ की कल्पना कराई है जिसे पीने से अमरता प्राप्त होती है। अमृत, सुधा आबेहयात आदि अनेक नाम उस पदार्थ के दिये गये हैं। ऐसी कथाऐं और किम्वदन्तियां हर देश में प्रचलित हैं जिनमें किसी अदृश्य देवताओं या महापुरुषों के अमर होने का वर्णन है। परन्तु प्रत्यक्षतः प्रमाणिक रूप से अभी तक एक भी ऐसा जीव कहीं भी नहीं देखा गया है, जो अमर हो। इस संसार की रचना ऐसे परमाणुओं से हुईहै जो हर पल चलते, गति करते और परिवर्तित होते हैं। विकाश और विनाश यह दोनों इसी प्रकार आपस में संबधित हैं जैसे कि रात और दिन। यदि मृत्यु न हो तो नया जीवन भी न होगा। अमरता का अर्थ है—गति हीनता। गति का नाम ही जीवन है। यह जीवन यदि अचल हो जाय तभी उसका नष्ट न होना सम्भव है। जो वस्तु चलेगी—वह घिसेगी, बिगड़ेगी और नष्ट होगी, यह आवश्यम्भावी है। इसलिये जिस रूप में मनुष्य जीवन आज है उसमें कोई अमर नहीं हो सकता। राम कृष्ण, ईसा, बुद्ध, मुहम्मद आदि अनेक योगी, यती, अवतार, देव-दूत इस पृथ्वी पर हुए हैं, परन्तु कोई एक भी अमर न हो सका अन्ततः सब को मृत्यु की शरण लेनी पड़ी। अति प्राचीन काल से मनुष्य अमरता की इच्छा कर रहा है कल्पनाओं, कथाओं की रचना उसने इस दिशा में बहुत कुछ की है, परन्तु अभी तक न तो कोई अमर हो सका और न किसी को अमृत ही मिला।

तो क्या 'अमृत' नामक कोई पदार्थ संसार में नहीं है? हमारा कहना है कि—है और अवश्य है। अत्यन्त उग्र आध्यात्म साधनाओं द्वारा हमारे पूजनीय ऋषियों ने उस अमृत की खोज की है ढूँढा है। और ढूँढ कर हमारे सामने उपस्थित कर दिया है। इसे सब कोई सरलता पूर्वक प्राप्त कर सकता है और यह प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है कि-मैं अमर हूं। अमर होने पर जो सन्तोष, शान्ति, प्रसन्नता और साहस प्राप्त होने को था वह सब का सब इस ऋषि कल्प-अमृत द्वारा प्राप्त हो सकता है। इस अमृत का दूसरा नाम है—'ब्रह्म ज्ञान'।

ब्रह्म विद्या वह मानसिक शिक्षा है जो शरीर की सीमा से उठाकर मनुष्य को आत्मा के भाव में ले जाती है। नश्वरता की सीमा से उठाकर अमरता की भूमिका में जागृत करती है। ब्रह्म विद्या—यह सिखाती है कि मनुष्य शरीर नहीं वरन् आत्मा है। शरीर के साथ उसकी मृत्यु नहीं होती वरन् पीछे भी वह अनन्त काल तक जीवित रहता है गीता—ब्रह्म विद्या का महा ग्रन्थ है। उसमें मानव प्राणी से कहा गया है—'तुम ऐसा विश्वास करो कि मैं आत्मा हूँ, अविनाशी हूँ, शरीर के मरने मेरी मृत्यु नहीं होती। देह एक प्रकार का कपड़ा है जिसे समय समय पर बदलने आवश्यकता होती है। जैसे कपड़े को बदलने में दुख शोक नहीं किया जाता वैसे ही शरीर बदलने में भी नहीं होना चाहिए।" आत्मा की अमरता के इस सिद्धान्त को साधारणतः सभी आदमी पढ़ते और सुनते हैं, किन्तु जो कोई गम्भीरता पूर्वक इस ओर ध्यान देता है और दृढ़ता पूर्वक यह विश्वास कर लेता है कि—"मैं वास्तव में आत्मा हूँ वास्तव में अविनाशी हूँ" तो उसके समस्त दृष्टिकोण और कार्यक्रम में एक दम आश्चर्य जनक परिवर्तन हो जाता है। उसे लगता है कि मैं

प्रत्यक्षतः अमृत पिये हुए हूं। मरने का, नष्ट होने का, जीवन से हाथ धोने का, उसके सामने कभी प्रश्न ही नहीं उठता, कपड़े के पुराने होने या फटने से कोई आदमी बेचैन नहीं होता। कपड़ा बदलते समय कोई मनुष्य न तो डरता है और न रोता पीटता है। क्यों? इसलिए कि उसका दृढ़ विश्वास है कि कपड़ा एक मामूली वस्तु है, यह फटती और बदलती जाती रहती है, कपड़ा फटने या बदलने से शरीर का कुछ अनिष्ट नहीं होता वरन पुराने की अपेक्षा नया मजबूत और सुन्दर कपड़ा मिल जाता है। शरीर और कपड़े बदलने के सिद्धान्त को जिस भली प्रकार पूर्ण विश्वास के साथ मनुष्य ने अपना लिया है यदि वह ठीक उसी प्रकार उतनी ही दृढ़ता, निष्ठा, और गम्भीरता के साथ मन में जमाले तो निश्चय समझिये उसकी मनोभूमि ठीक वैसे ही हो जायगी जैसी वास्तविक अमृत पीने वाले की हो सकती है। मृत्यु का डर जो कि मानव जीवन में सबसे बड़ा डर है, ब्रह्म विद्या के द्वारा आध्यात्म निष्ठा द्वारा मिट सकता है। और कोई उपाय ऐसा नहीं है जो इस कलेजे में कांटे की तरह सदा चुभते रहने वाले भय से छुटकारा दिला सके।

ब्रह्म विद्या—अमर आत्मा का विश्वास सचमुच भूलोक का अमृत है। इसे पान करने के उपरान्त मनुष्य की दिव्य दृष्टि खुलती है। वह कल्पना करता है कि मैं अतीत काल से, सृष्टि के आरम्भ से, एक अविचल जीवन जीता चला आ रहा हूँ। अब तक लाखों करोड़ों शरीर बदल चुका हूँ। पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े, जलचर, थलचर, नभचरों के लाखों मृत शरीरों की कल्पना करता है और अन्तर्दृष्टि से देखता है कि ये—इतने शरीर समूह मेरे द्वारा पिछले जन्मों में काम में लाये एवं

त्यागे जा चुके हैं। उसकी कल्पना भविष्य की ओर भी दौड़ती है अनेक नवीन, सुन्दर, ताजे शक्ति सम्पन्न शरीर सुसज्जित रूप से सुरक्षित रखे हुए उसे दिखाई पड़ते हैं जो निकट भविष्य में उसे पहनने हैं। यह कल्पना—यह धारणा—ब्रह्मविद्या के विद्यार्थी के मानस लोक में सदैव उठती, फैलती और पुष्ट होती रहती है। यह विचार धारा धीरे धीरे—निष्ठा और श्रद्धा का रूप धारण करती जाती है, जब पूर्ण रूप से, समस्त श्रद्धा के साथ साधक यह विश्वास करता है कि यह वर्तमान जीवन—मेरे महान् अनन्त जीवन का एक छोटा सा परमाणु मात्र है तो उसके समस्त मृत्यु जन्य शोकों का समापन हो जाता है। उसे बिल्कुल ठीक वही आनन्द उपलब्ध होता है जो किसी अमृत का घट पान वाले को होना चाहिए।

"मैं पवित्र अविनाशी और निर्लिप्त आत्मा हूँ" इस महान् सत्य को स्वीकार करते ही मनुष्य अमरत्व के समीप पहुँच जाता है। उसका दृष्टिकोण अमर, सिद्ध, महात्मा और देवताओं जैसा हो जाता है। वह परिस्थिति के भव बन्धन से बन्धा हुआ इधर उधर नाचता नहीं फिरता, परन्तु अपने लिए वैसे ही संसार का जान बूझकर निर्माण करता है, जैसा सम्मान, स्वास्थ्य [illegible] पर चलना [illegible] है। यदि आप अपना सम्मान करते हैं, [illegible] मनुष्य ये मानते हैं अपनी श्रेष्ठता और पवित्रता पर विश्वास करते हैं तो सचमुच वे ही बन जाते हैं। योग शास्त्र पुकार पुकार कर कहता है कि जो समझता है कि मैं सिद्ध हूं वह सिद्ध है, जो समझता है कि जो [illegible] है।" मोटा कहावत है कि "लड़के का नाम घर से रखा जाता है।" अपने लड़के का नाम यदि आप दुः-रखेंगे, तो यह आशा रखना व्यर्थ है कि बाहर वाले उसे किस

अच्छे नाम से पुकारेंगे। मनोविज्ञान शास्त्र साक्षी है कि जिन बालकों को उनके माता पिता अध्यापक या अभिभावक सदा मूर्ख बेवकूफ, नालायक आदि कह कर उसे अपमानित और लाञ्छित किया करते हैं, उस बालक के लिए बड़ा होकर महत्व प्राप्त करना कठिन है। मनुष्य गीली मिट्टी के समान है, जो संस्कारों द्वारा भला या बुरा बनाया जाता है। हमारा बाह्य मस्तिष्क जिस प्रकार के विश्वास अपने अन्दर धारण करता है, पिछला गुप्त मस्तिष्क उसे किस प्रकार स्वीकार करके सूक्ष्म चेतना में ग्रहण कर लेता है, इसका मर्म मैस्मरेजम और हिप्नोटिज्म के जानकार भली प्रकार समझते हैं। जो व्यक्ति बार बार अपने सम्बन्ध में बुरे विचार करेगा, हीनता और तुच्छता के भाव रखेगा, वह निस्सन्देह कुछ समय में वैसा ही बन जायगा। मैं नीच हूं, पापी हूँ, दुष्ट हूँ, कुकर्मी हूँ, नरक गामी हूँ, आलसी हूँ, अकर्तव्य हूँ, तुच्छ हूँ, दास हूँ, असमर्थ हूं, दीन हूं दुखी हूं, इस प्रकार के मनोभाव रखने का स्पष्ट फल यह होता है कि हमारे जीवन की अन्तः चेतना उसी ढांचे में ढल जाती है और रक्त के साथ दौड़ने वाली विद्युत शक्ति में ऐसा प्रवाह उत्पन्न हो जाता है, जिसके द्वारा हमारे सारे काम काज ऐसे होने लगते हैं, जिनमें उपरोक्त भावनाओं का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देने लगता है। आत्म तिरस्कार करने वालों के कामों को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह नीच वृत्ति का, अकर्मण्य, आलसी, दास, दीन और अपाहिज है। अपने आपे का तिरस्कार करने वाले आत्म हत्यारे अपना यह लोक भी बिगाड़ते हैं और परलोक भी। उनकी उन्नति के स्रोत रुक जाते हैं और दीनता की सड़ी हुई कीचड़ में कीड़ों की तरह बुजबुजाते रहते हैं। यह कीड़े सदैव दुख दरिद्र से घिरे रहेंगे। उनका उद्धार परमात्मा से भी न हो

सकेगा, क्योंकि कृपा करके उन्हें कीचड़ से बाहर कोई निकाल भी दे तो वे फिर अपने उन्हीं पूर्व संस्कारों की नाली में फिसल पड़ेंगे। राजनैतिक स्वतन्त्रता और आर्थिक सुविधा की आज प्रधान मांग सुनाई पड़ती है, परन्तु जहाँ के निवासियों के मस्तिष्क हीनता, दासता और तुच्छता के विचारों से भरे हुए हैं, उन्हें यह स्वर्गीय फल प्राप्त नहीं हो सकते। एक के बाद दूसरा शासक या शोषक उत्पन्न हो जायगा।

यदि आप अपने को अमर बनाना चाहते हैं, तो अपनी आत्मा को महान् स्वीकार कीजिए, यदि संसार में सम्मान-पूर्वक जीना चाहते हैं, तो आत्मा का सम्मान कीजिए, यदि परमात्मा के साथ आत्मा को जोड़ना चाहते हैं, तो अपने को इस रिश्तेदारी के योग्य स्वीकार कीजिए। एक चमार की और ब्राह्मण की रिश्तेदारी नहीं जुड़ सकती, आप परमात्मा को तब तक नहीं प्राप्त कर सकते, जब तक कि अपनी आत्मा को उसी की बिरादरी का न बनावें। नीचता से उच्चता की ओर, तुच्छता से महानता की ओर, बढ़ने का एक मात्र उपाय यह है कि आप अपनी आत्मा को ईश्वर का अंश समझते हुए पवित्र मान और उसका पूरा पूरा सम्मान करें। सम्मान का अर्थ घमंड करना, अहंकार में भर जाना, ऐंठे रहना, अकड़ कर चलना, [illegible] जाना या दूसरों को नीच समझना नहीं है, वरन् यह है कि अपने अन्दर ईश्वर को, उसके पवित्रतम अंग को [illegible] रख कर उसकी पूजा अर्चना करें, उसके आदेशों का ध्यानपूर्वक सुन [illegible] है कि परमात्मा के दरबार में

आत्मा को अन्दर बैठा हुआ देख कर ऐसे आचरण करने चाहिए जो कि उसके संमुख करने योग्य हैं। "मैं पवित्र हूं।" इसके साथ ही अन्तःस्थल से एक विद्युन्मयी प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है, जो हमारे रोम-रोम में पवित्रता का संचार करती है। 'सोऽहम्' सिंह की दहाड़ सुनकर अपवित्रता और कुभावना रूप-शशक शृगाल के डर के मारे ऐसे भाग जाते हैं कि फिर उनका कहीं ढूंढे भी पता नहीं लगता। आत्म-सम्मान की ज्योति को अपने अन्दर जलाते ही वास्तविक मनुष्यता का उदय होता है। जो अपने में पवित्र दैवी अंश का अनुभव करता है, वह चक्रवर्ती सम्राट् की तरह महान् बन जाता है, उसका दृष्टि-कोण इतना ऊँचा हो जाता है कि फिर तुच्छता और पापमय कार्यों की ओर आंख उठा कर देखना भी उसे पसन्द नहीं होता। वह एक उद्देश्य पूर्ण जीवन जीता है।

आत्मा की अमरता पर विश्वास करना ही अमृत है। "मैं अविनाशी हूँ" पग-पग पर दिखाई देने वाले भयों को मार भगा कर निर्भयता प्रदान करने वाला यह मृत्युञ्जय बीज मन्त्र है। अपने अन्दर पवित्रता अनुभव करने में आत्म सम्मान है और अपने को अविनाशी समझने से आत्म विश्वास का प्रादुर्भाव होता है। मेरा छोटा सा जीवन है, इसमें क्या हो सकता है, कितना ज्ञान सीखूं, क्या करूँ क्या न करूँ, इस तरह जीवन को क्षणभंगुर समझने से अस्थिरता, चंचलता और उदासीनता उत्पन्न होती है। किसी अनिश्चित समय में पूरे होने वाले कार्य के लिए थोड़े जीवन का ध्यान करके एक निराशा सी आती है, इसी प्रकार जीवन को परम प्रिय समझने से पग-पग पर भय आते हैं, रोग का भय, मृत्यु का भय, दुर्घटना का भय, शत्रु का भय, विपत्ति का भय, न जाने कितने भय, प्रति दिन हमें डराते,

विचलित करते और दुखी बनाते हैं। किसी भय की जरा सी छाया दिखाई दी कि कलेजा धक् धक् करने लगता है, क्योंकि जीवन नश्वर मालूम देता है। 'यदि हम मर गये तो ऐसा अवसर फिर कहां मिलेगा।' ऐसे विचार उस शरीर के प्रति असाधारण ममता उत्पन्न करते हैं और भयाक्रान्त एवं ममताग्रस्त मनुष्य से महान् कर्त्तव्य धर्म का पालन हो नहीं सकता। जीवन को भस्मीभूत समझने वाले व्यक्ति के संमुख "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" का सिद्धान्त ही रह सकता है। वह बीमारों की सेवा करते हुए डरता है कि कहीं छुत लगकर मैं मर न जाऊँ, वह यात्रा करने से डरता है कि कहीं मध्यार्ग में दुर्घटना न हो जाय वह चोर डाकुओं और अत्याचारियों का मुकाबिला करने से डरता है कि कहीं मैं मर न जाऊँ, ऐसे ही नाना प्रकार के भय मनुष्य को बेचैन बनाते रहते हैं और उसे भीरु, डरपोक, कायर बुझदिल और सशङ्कित बना देते हैं। इस प्रकार निराश और भय के झूले में झूलने वाले लोगों को "मैं अविनाशी हूं।" यह मन्त्र जीवन संदेश देता है। यह कहता है—"उठो! कर्तव्य पर प्रवृत्त होओ। तुम्हारा जीवन अखंड है, कपड़े बदल जायगे, पर तुम नहीं बदलोगे, शरीर बदल जायगे, पर जीवन नहीं बदलेगा। अपने ऊपर विश्वास करो, अपने जीवन पर विश्वास करो, आत्मा और परमात्मा पर विश्वास करो। तुम्हें कोई नष्ट नहीं कर सकता। हे अजर, अमर, अविनाशी और अखंड आत्मा! उठ, अपने कर्तव्य पर प्रवृत्त हो, गाण्डीव उठा और धर्म, युद्ध में पाञ्चजन्य का तुमुल नाद कर! मृत्यु कोई वस्तु नहीं है। जीवन अखण्ड है। शरीर बदलने से हमारी मृत्यु कदापि नहीं हो सकती।" मैं जो पेड़ लगा रहा हूं, उसका फल मुझे खाने को न मिलेगा, यह सोचना नास्तिकता है। अपने महान् कार्य को बिना

किसी प्रकार का भय या संकोच किये आरम्भ करो, कई जन्मों में तो वह पूरा हो ही जायगा। उसका फल तुम्हें ही मिलना है, अपने जीवन को अखण्ड समझो, अपने को अमर समझो, अविनाशी मानो, निर्भय रहो, निर्द्वन्द्व विचारो।

अपनी अमरता के साथ साथ आपको विश्वास होना चाहिए कि "मैं निर्लिप्त आत्मा हूँ।" संसार की वस्तु प्रति क्षण परिवर्तित हो रही है, कोई भी भौतिक वस्तु अधिक समय तक एकसी दशा में नहीं रह सकती। धन सम्पत्ति हमेशा रहेगी ही, ऐसा नहीं मानना चाहिए, परिस्थितियों के प्रभाव से वह एक दिन में इधर से उधर हो सकती है। हमारा शरीर सदा इस हालत में नहीं रह सकता, वह भी रोगी या वृद्ध होगा। मित्र कुटुम्बी और परिजन सदा जीवित रहने वाले नहीं हैं। उनकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। इन नाशवान वस्तुओं को जो जोर से पकड़ता है, वह उनके साथ स्वयं भी नष्ट हो जाता है। धन या स्त्री. पुत्रों को नष्ट होने पर आत्म हत्या कर लेने वाले, पागल हो जाने वाले या शिर धुन धुन कर रोने वाले अखंड जगत् का मर्म नहीं समझते। इन्हें जानना चाहिए कि माया छाया है। इसके पीछे भागने से कुछ हाथ न आवेगा। आत्म निर्भर होना, अपने को कमल पत्र की तरह निर्लिप्त मानना, ब्रह्मविद्या का तीसरा चरण है, जो माया की ममता छुड़ाता है और नष्ट होने वाली वस्तुओं के कारण घड़ी-घड़ी पर जो दुखों के पर्वत टूटते हैं, उनको हटा कर दूर कर देता है। संसार की नाशवान वस्तुओं पर अवलम्बित मत रहिए, उनके संपर्क में रहिए, पर लिप्त मत हूजिए, आत्म निर्भर होना सीखिये, अपने अन्दर ऐसी योग्यता धारण कीजिए कि हर एक परिस्थिति का मुकाबिला कर सकें और हर मौके पर प्रसन्न रह सकें। आपत्ति आने पर भी आपके

होटों पर मुसकराहट नाचती रहे, ऐसी आत्म निर्भरता को हृदयंगम करना चाहिए।

जिस सुरलोक के अमृत की कल्पना की गई है उसका आरम्भिक छोर कुछ आकर्षक मालूम होता है परन्तु अन्तिम छोर बहुत ही रूखा और कर्कश है। मुसलमानी धर्म ग्रन्थों में एक कथा है कि-ख्वाजा खिजर की कृपा से सिकन्दर आबेहयात (अमृत) के चश्मे तक पहुँचा। सिकन्दर उस अमृत को पीने को ही था कि पास में बैठे हुए एक कौए ने चिल्लाकर कहा—ऐ बदनसीब! खुदा के लिए इस पानी को न पीना। सिकन्दर ने हैरान होकर पूछा-क्यों? कौए ने उत्तर दिया— मैंने एक बार बदनसीबी से इस पानी की एक बूँद पी ली। अब बुड्ढा और कमजोर हूं। साथी सङ्गी सब मर गये पर मैं अकेला उनकी याद करता हुआ रात दिन बैठा बैठा रोया करता करता हूं। अकेला भटकता हूं नये पैदा होने वाले बच्चों के उल्लास को देख देखकर मन मसोस कर रह जाता हूं। जीने से मेरा दिल भर गया है, पर प्राण नहीं निकलते। सो ऐ बादशाह! अगर तुम भी इस पानी को पी लोगे तो तुम्हारा भी यही हाल होगा। सिकन्दर कुछ देर स्तब्ध खड़ा हुआ कौए की बातों पर गौर करता रहा और आबेहयात (अमृत) को बिना पिये ही उलटे पांवों वापिस लौट आया।

यदि मनुष्य शरीर से अमर हो भी जाय तो यह बात उसके लिए अन्ततः दुख का कारण ही बनेगी। वह अमरता— जो मनुष्य को सन्तोष और शान्ति प्रदान करने की क्षमता रखती है—आध्यात्मिक अमरता—ही है। ब्रह्मज्ञान का अमृत ऐसा अनुपम है जिसके आगे देवताओं वाला अमृत अत्यन्त तुच्छ है। ब्रह्म विद्या से मनुष्य को निर्भयता, स्वतंत्रता, प्रसन्नता

एवं प्रफुल्लता प्राप्त होती है। जीवन के दृष्टिकोण में एक नया तेज भर जाता है, वह शारीरिक भोगों को भौतिक वस्तुओं के परिग्रह को महत्व नहीं देता वरन् आत्मा को ऊँचा उठाने वाले, जीवन को सरस, निर्मल एवं पवित्र बनाने वाले, हृदय को सन्तोष देने वाले, कार्यों को महत्व देता है। उच्च, सात्विक और परमार्थिक कार्यों में उसकी रुचि होती है, उन्हीं में मन लगता है और उन्हीं में उसे रम जाता है। ऐसे शुभ विचार और शुभ कर्म करने वाले मनुष्य को इसी जीवन में स्वर्ग है क्योंकि उसकी हर एक क्रिया स्वर्गीय होती है।

अमृत पीकर अमर होने वाले मनुष्य की चिन्तायें और तृष्णायें अधिक बढ़ेंगी क्योंकि जब सौ पचास वर्ष के जीवन के लिए मनुष्य इतने इतने सरजाम इकट्ठे करता है तो अमर जीवन के लिए वह असंख्य गुने सरंजाम जोड़ने और जमा करने की फिक्र करेगा, और वे फिक्रें ही उसे खाने लगेंगी। इसके विपरीत ब्रह्म ज्ञान का अमृत समस्त चिन्ता और तृष्णाओं को समाप्त कर देता है। मृत्यु और जीवन को वह एक ही जुए में जोत देता है, दोनों का यह जोड़ा कितना भला मालूम पड़ता है। जो मृत्यु और जीवन को समान दृष्टि से देखता है वह धन्य है। शोक, मोह, चिन्ता, क्लेश, पश्चात्ताप, तृष्णा, पाप, आदि की छाया भी ऐसे मनुष्यों तक नहीं पहुँच पाती। ब्रह्म ज्ञान का अमृत पीकर तृप्त हुए स्थिति प्रज्ञ ही वास्तव में अमर हैं, जो आध्यात्म ज्ञान को उच्च एवं उत्तम बनाने की प्रेरणा करती है वास्तव में वही अमृत की निर्झरिणी है। पाठको! इस सुधा धारा को पान करो और अमृतत्व का आस्वादन करो।

पारस कहां है ?



जिस वस्तु के स्पर्श मात्र से लोहे जैसी निम्न कोटि की धातु स्वर्ण जैसी बहुमूल्य बन जावे, ऐसे किसी पदार्थको प्राप्त करने के लिये दुनियाँ बहुत इच्छुक है। प्रयत्नशील मनुष्यकी इच्छाओं में तीन इच्छाएं सर्वोपरि है—(१) जीवन इच्छा (२) धन इच्छा (३) सफलता की इच्छा। इन तीनों का मन मानी मर्यादा में पूर्ति होते हुए देखने का स्वप्न मनुष्य बहुत प्राचीन काल से देखता चला आ रहा है। जीवन को स्थायी देखने के लिए अमृत की कल्पना की गई। समस्त मनोवाञ्छाओं की पूर्ति के लिए कल्पवृक्ष की मानसिक रचना हुई। धन के, स्वर्ण के, बाहुल्य के लिए पारस नामक किसी वस्तु तक मस्तिष्क ने दौड़ लगाई। क्षण भर में बिना अधिक समय और परिश्रम किये इच्छित वस्तुएं प्राप्त करने की आकांक्षा मनुष्य को इतनी बेचैन किये रही है कि जब वह इन वस्तुओं को प्राप्त न कर सका तो किन्हीं काल्पनिक पदार्थों के अस्तित्व का सपना देखना आरम्भ किया और अपनी लालसाओंको किसी प्रकार बहलाया।

कहते हैं कि पारस पत्थर किन्हीं किन्हीं पहाड़ों पर होता है, पर उसकी कोई पहचान नहीं पाता। पहाड़ी चरवाहे बकरी के खुरों में लोहे की कीलें ठोक देते हैं जब कभी वे बकरियां पारस पत्थर के ऊपर से निकलती हैं तो वे कीलें सोने की हो जाती हैं। चरवाहे उन्हें निकाल लेते हैं और फिर नई लोहे की कीलें उसी जगह लगा देते हैं। नानी की कहानियों में कहा जाता है कि मादा सुअर जब अपने बच्चे को दूध पिलावे तब अगर दूध की बूँदे इधर ईंट पत्थरों पर गिर पड़े तो वे सोने के

हो जाते हैं। कहा जाता है कि बुन्देल खण्ड के राजा चन्देल के यहां पारस पत्थर था। इस प्रकार की और भी अनेक किम्वदन्तियां प्रचलित हैं। साधु महात्मा लोग तांबे को किसी विधि से सोना बना देते हैं, ऐसे विश्वास भी लोगों में फैले हुए हैं। रसायनी विद्या का लटका दिखाकर तथाकथित साधु लोग बेचारे भोले भाले लोगों की चुटिया मूड़ते हैं। उन्हें अपने चेला पंथी चंगुल में फँसाये रहते हैं। परन्तु भली प्रकार ढूँढ खोज करने पर अब इस नतीजे तक पहुँचा गया है कि ऐसी न तो कोई वस्तु है जिसे छूने से लोहा सोना बन सके और न ऐसी कोई विद्या है जो तांबे को सोना बना सके। यदि किसी एक भी आदमी को ऐसी कोई वस्तु या विद्या मिली तो उसी दिन सोना-सोना न रहेगा, वह पीतल और कांसे की तरह एक साधारण धातु रह जायगी। सोना इसी लिये सोना है कि वह कठिनाई से और थोड़ी मात्रा में मिलता है। जब वह आसानी से और बड़ी मात्रा में तैयार होने लगा तो उसकी कोई कीमत न रहेगी, तब शायद एक रुपये का दो सेर सोना बिकने लगे।

हमें उस काल्पनिक, अस्तित्व रहित, पारस के लिये ललचाने और मुँह में पानी भरने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि इस संसार में एक ऐसा पारस बहुत पहले से मौजूद है जिसके स्पर्श मात्र से कम मूल्य की रद्दी सड़ी चीजें क्षण भर में बहुमूल्य, देश कीमती, बन जाती हैं। यह पारस परमात्मा ने अपने हर एक पुत्र को दिया है ताकि यदि उसे हीन वस्तुओं से या हीन वातावरण से ही काम चलाना पड़े तो इस पारस को उनसे छुवाकर तुरन्त ही उन्हें बहुमूल्य बना लिया करे। यह वस्तु अदृश्य, अप्राप्त, काल्पनिक या अवास्तविक नहीं है। अनेक व्यक्तियों के पास वह आज भी मौजूद है। उसे काम में

लाते हैं और लाभ उठाते हैं। इन दुनियां में दौलतमन्दों की कमी नहीं है। ऐसे लोग अब भी भारी संख्या में मौजूद हैं जिनके पास एक विशेष प्रकार का पारस पत्थर मौजूद है और उसके द्वारा वैसे ही वैभवशाली, सुखी, सन्तुष्ट तथा प्रसन्न हैं जैसा कि लोहे को सोना बनाने वाले पारस के पास में होने पर कोई होता।

यह पारस क्या है ? यह है-प्रेम। एक काला कलूटा आदमी जिसे आप पूर्णतया कुरूप, गँवार या असभ्य कह सकते हैं शायद स्त्री के लिए कामदेव सा रूपवान और इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान है। जैसे शची अपने इन्द्र को पाकर प्रसन्न है उसकी सेवा करती है और अपने को सौभाग्यशालिनी मानती है वैसे ही एक भीलनी अपने अर्धनग्न और धनहीन भील को पाकर प्रसन्न है। विचार कीजिए कि इसका कारण क्या है ? जो आदमी सब को कुरूप और गन्दा लगता है वह एक स्त्री को इतना प्रिय क्यों लगता है ? इसका कारण है-प्रेम। प्रेम एक प्रकार का प्रकाश है, अँधियारी रात में आप अपनी बैटरी की बत्ती से किसी वस्तु पर रोशनी फेंके तो वह वस्तु स्पष्ट रूप से चमकने लगेगी। जब कि पास में पड़ी हुई दूसरी अच्छी सुन्दर चीजें भी अँधियारी के कारण काली कलूटी और भी हीन हो मालूम पड़ेंगी, तब वह वस्तु जो चाहे सस्ती या भद्दी क्यों न हो बैटरी का प्रकाश पड़ने के कारण स्पष्ट तथा चमकदार होगी अपने रंग रूप का भला प्रदर्शन कर रही होगी, आँखों में जँच रही होगी। प्रेम में ऐसा ही प्रकाश है। जिस किसी से भी प्रेम किया जाता है वही सुन्दर, गुणवान, लाभदायक, भला, बहुमूल्य, मनभावन मालूम पड़ने लगता है। माता का दिल जानता है कि उसका बालक कितना सुन्दर

है। अमीर अपने हीरे जवाहरात और महल तिबारी की वैसी कीमत अनुभव करते हैं गरीबों को अपने टूटी फूटी, झोंपड़ी, फटे पुराने कपड़े और मैले कुचैले सामान से भी वैसी ही ममता होती है।

दार्शनिक दृष्टि से विवेचना करने पर मालूम होता है कि वस्तुऐं स्वतः न तो बहुमूल्य हैं और न अल्प मूल्य। मनुष्य का जो प्रिय विषय होता है उस की पूर्ति जिन साधनों से होती है उन्हें ही वह सम्पत्ति समझता है। जिस सीमा तक अपनी मनोवाञ्छा की पूर्ति होती है उतना ही वह साधन सम्पत्ति प्रिय लगती है, यह प्रियता ही बहुमूल्य होने की कसौटी है। धन सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र आदि वस्तुऐं साधारणतः विशेष मूल्यवान् मालूम पड़ती हैं, किन्तु जब इनकी ओर से वैराग्य उत्पन्न होता है त्याग भाव आता है तो धूलि के समान निरुपयोगी और व्यर्थ मालूम पड़ने लगती है। गृह त्यागी महात्मा जब संन्यास में प्रवेश करते हैं तो उन्हें अपना सारा वैभव तुच्छ घास के तिनके जैसा मालूम पड़ने लगता है, उसे त्यागने में वे रत्ती भर भी दुख शोक अनुभव नहीं करते। बड़े परिश्रम से मनुष्य रुपया कमाता है, परन्तु प्रतिष्ठा, विपत्ति, आदि का अवसर आने पर उन रुपये को कंकड़ी की तरह बहा देता है। परिश्रम करते समय उसे रुपया मूल्यवान लगता था, तब वह बचा बचाकर जमा करता था जब विपत्ति का अवसर आया तो बिना किसी हिचकिचाहट के वह सारा रुपया उसने खर्च कर डाला, इससे प्रतीत होता है कि रुपया बहुमूल्य नहीं वरन् अपनी रुचि को, आवश्यकता को, पूरा करने वाले साधन बहुमूल्य हैं। यदि किसी उपाय से साधारण वस्तुओं को अपनी रुचि पूर्ण करने वाला, प्रसन्नता देने वाला, बनाया जा सके तो उस उपाय को

पारस कहने में हिचक न होनी चाहिए। जिस वस्तु के द्वारा साधारण कोटि की जैसी तैसी वस्तुऐं भी रुचिकर आनन्द-दायक बहुमूल्य बन जाती है वह पारस नहीं तो और क्या है?

किसी वस्तु को कुछ से कुछ बनाने के लिए एक शक्ति-शाली धारा की आवश्यकता है। लोहे को स्वर्ण, लघु को महान बनाने के लिये एक बलवान सत्ता चाहिये। मनुष्य जीवन में भी एक ऐसा सजीव सत्ता मौजूद है जो नीरस उदासीन और तुच्छ वातावरण को दिव्य एवं स्वर्गीय बना देती है। वह सत्ता है-प्रेम। निर्जीव मशीनें बिजली की धारा का स्पर्श करते ही धड़धड़ाती हुई चलने लगती हैं, अंधेरे पड़े हुए बल्ब बटन दबाते ही प्रकाशित हो जाते हैं, बन्द रक्खा हुआ पखा विद्युत की धारा आते ही फर फर करके घूमने लगता है और अपनी हवा द्वारा लोगों को शीतल कर देता है। प्रेम एक सजीव बिजली है वह जिसके ऊपर पड़ती है उसे गति शील बना देती है। निराश, उदास रूखे, गिरे हुए और झुंझलाये झल्लाये हुए लोगों का एक दम परिवर्तन कर देती है। वे आशा, उत्साह, उमङ्ग, प्रसन्नता और प्रफुल्लता से भर जाते हैं। देखा गया है कि उपेक्षा और तिरस्कार ने जिन लोगों को दुर्जन बना दिया था वे ही प्रेम की डली चखकर बड़े उदार सद्गुणी और सज्जन बन गये। दीपक स्नेह की चिकनाई को पीकर जलता है मनुष्य का जीवन भी कुछ ऐसा ही है जिसे स्नेह से सींचा गया है उसका दिल हरा भरा और फला फूला रहेगा। जो स्नेह से वंचित है वह रूखा, झुंझलाया हुआ, निराश और अनुदार बन जायगा। इसलिए दूसरों को यदि अपना इच्छानुवर्ती, मधुर भाषी, प्रिय व्यवहारी बनाना है तो इस निर्माण कार्य के लिए प्रेम चाहिये। अन्धकार को प्रकाश में, निर्जीवता को जीवन में, मरघट को उद्यान में, बदल देने की शक्ति का नाम प्रेम है। इतनी चमत्कार

पूर्ण सजीव परिवर्तन कर सकने वाली शक्ति को यदि पारस कहा जाता है तो कुछ अत्युक्ति की बात नहीं है।

वह पारस जो लोहे को सोना बना सकता है न तो इस दुनियां के लिए उपयोगी है और न आवश्यक। क्यों कि अर्थ शास्त्र के नियमानुसार 'पैसा' और कुछ नहीं, श्रम और योग्यता का स्थूल रूप है। यदि श्रम और योग्यता के बिना ही असीम स्वर्ण राशि मिलने लगे तो संसार का आर्थिक संतुलन बिलकुल नष्ट भ्रष्ट होजायगा। जिनके पास यह वस्तु होगी ईर्षा के कारण उनके प्राण भी संकट में पड़े बिना न रहेंगे। कोहेनूर हीरा का इतिहास जिन्होंने पढ़ा है वे जानते हैं कि यह बेश कीमती हीरा जिस जिस के पास गया है उसे ईर्षा की आग ने बुरी तरह झुलसाया है। फिर पारस जैसी अद्भुत वस्तु को प्राप्त करने वाले का कुछ क्षण के लिए भी इस संसार में सही सलामत रहना कठिन है। कहते हैं कि एक गरीब आदमी ने किसी देवता को प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त किया कि वह जिस वस्तु को छू ले वही सोने की होजाय। जब उसे यह वरदान मिला मन में फूला न समाया। जब घर पहुंचा तो उसने अपनी लड़की की गुड़ियां छू ली, वह सोने की हो गई। लड़की ने जब धातु की गुड़ियां देखी तो रोती हुई पिता के पास गई और कहने लगी—पिताजी मुझे तो कपड़े की गुड़िया चाहिए। पिता ने सान्त्वना देने के लिए लड़की को गोद में उठा लिया वह भी ठोस सोने की होगई, लड़की को मरी देख कर उसकी माता दौड़ी आई, वह भी जरा सा छु गई छूने की देर थी कि वह भी सोने की हो गई। वह आदमी घबराया जो कुछ हाथ में आता सब सोने का हो जाता, रोटी पानी भी सोने का। भूखों

मरने की नौबत आगई। तब उसने उसी देवता से प्रार्थना करके वह वरदान वापिस करवाया।

परमात्मा ने अपने पुत्रों को किसी ऐसी वस्तु से वंचित नहीं किया है जो वास्तव में उसके लिए उपयोगी और आवश्यक है। यह काल्पनिक पारस मनुष्य के लिये हानिकारक और दुखदायी है इस लिये उसका अस्तित्व उपलब्ध नहीं है। हां, आध्यात्मिक पारस–प्रेम–जिसकी चर्चा इन पंक्तियों में की जा रही है, उपयोगी भी है और आवश्यक भी। जिसने इस पारस को प्राप्त किया है वह अपने चारों ओर स्वर्गीय वातावरण की सृष्टि कर लेता है, सोने का उपयोग यही है कि उससे मानसिक तृप्ति के साधन उपलब्ध होते हैं, इसीलिए सोने को महत्व दिया जाता है, किन्तु जितनी मानसिक तृप्ति सोने द्वारा खरीदी हुई वस्तुओं से होती है, उससे अनेक गुनी इस आध्यात्मिक अमृत पारस से हो जाती है।

प्रेम चैतन्य आत्मा के सर्वोत्तम गुणों का प्रतिनिधित्व करता है। जड़ वस्तुओं का यह नियम है कि वे खिंचकर आपस में एक दूसरे से मिलने का प्रयत्न करती हैं, धूलि में मिले हुए धातुओं के कण आपसी आकर्षण शक्ति के बल से खिंच खिंच कर एक स्थान पर इकट्ठे होने शुरू होते हैं और एक दिन बड़ी बड़ी खानें जमा होजाती हैं। यह आकर्षण शक्ति चैतन्य तत्वों में और भी तीव्र होती है। जड़ तत्वों को देखिए उनका जीवन एक दूसरे को कुछ दान करने और प्रेम से निकटस्थ होने के लिए हर घड़ी क्रियाशील होरहा है। नाले नदियों के साथ अपने को आत्मसात् कर देने के लिए दौड़ रहे हैं और नदियाँ सागर की ओर भागी जा रही हैं। इनमें से कोई अपने संकुचित स्वार्थ में तल्लीन नहीं है, वरन् अपने से अधिक के साथ तल्लीन होकर

'अधिकस्य अधिकम् फलम्' का लाभ उठाने के लिए उद्योगशील हैं। जब पानी के छोटे बड़े सभी स्रोत समुद्र के लिए सर्वतो भावेन दौड़ते हैं तो समुद्र भी उसी नीति का अनुसरण करता है। बादलों को वह अपनी सम्पत्ति देता है और वे प्रेमी बादल इस भार को अपने कधे पर लादकर सृष्टि के ऊपर बरसा देते हैं, इस प्रकार इन नदी नालों का तारतम्य यथावत् जारी रहता है। यह अखंड प्रवाह जिस दिन खंडित होजायगा, उसी दिन संसार में त्राहि त्राहि मच जावेगा। अपनी योग्यताओं को जड़ जगत मे कोई भी अपने लिए नहीं रोक रखता, वरन् पवित्र हृदय से दूसरों के देने के लिए निरन्तर उद्योग शील रहता है। आत्मा सबसे चैतन्य तत्व है यह आकर्षण उसमें सबसे अधिक है। दूसरों के पक्ष में अपने क्षणिक स्वार्थ का त्याग कर उसके साथ आत्मसात् होने का उसमें ईश्वर दत्त स्वभाव शास्वत काल से चला आता है। एक मनुष्य दूसरे को अपनी योग्यताऐं सदैव देता है। घर घर में देखिए माता, पिता अपनी सन्तान के लिए कितना आत्म त्याग करते हैं। पति, पत्नी आपस में कितने उदार दानी होते हैं। यह अखड प्रवाह सृष्टि को सुव्यवस्थित रखे हुए हैं। जिस दिन आत्म दान की शृंखला टूट जायगी, उसी दिन प्रलय के दृश्य उपस्थित हो जायँगे।

ससार मे विभिन्न आकृति के प्राणी दृष्टिगोचर होते हैं, फिर भी उनकी आत्मीयता अखड है। पराया इस दुनियां में कुछ नहीं सब अपना है, या अपना कुछ नहीं सब पराया है, चाहें जैसे कहिए भाव एक ही है। परिवार का सब से बड़ा और उत्तरदायी वृद्ध पुरुष सारे परिवार को सुव्यवस्थित रखने की अपनी जिम्मेदारी को समझता है। इसलिए उसे अपना ध्यान बहुत ही कम रहता है

शायद ही हो। हवन किये हुए पदार्थ सूक्ष्म होकर उच्चरित मन्त्रों की सद्भावना के साथ मिश्रित होकर अखिल आकाश तत्व में व्याप्त हो जाते हैं और सृष्टि के अगणित जीवों को नाना प्रकार के सुख पहुंचाते हैं। इस प्रकार एक रुपये की हवन सामिग्री से संसार का जितना लाभ हो सकता है, वह स्थूल प्रकार के हजारों रुपये के लाभ से अधिक है। पर इस महत्व को समझने वाले बहुत ही कम होते हैं। इसी प्रकार शुभ संकल्पों का यज्ञ इतना उच्च कोटि का है कि इसकी समता में बड़े-बड़े सेवा उपकार और दान पुण्य तुच्छ हैं। सदैव शुभ विचारों की सामिग्री को जीवन यज्ञ में हवन का ज्ञान-यज्ञ विश्व के सम्पूर्ण यज्ञों में ऊँची से ऊँची कोटि का है। विचार एक मूर्तिमान पदार्थ है, जो भाप की तरह उड़ता है और बादलों की तरह बरसता है। जब हमारे मस्तिष्क में से कोई भला या बुरा विचार निकलता है, तो वह आकाश में उड़ जाता है और इधर उधर घूमता फिरता है। रेडियो स्टेशन से ब्राडकास्ट की हुई लहरें उन स्थानों पर साफ २ सुनाई देती हैं, जहां रेडियो सेट लगे हुए हों। इसी प्रकार वे विचार उन लोगों के मस्तिष्कों से टकराते हैं, जिनके मन में कुछ कुछ वैसे ही भाव उठ रहे हों। यदि हम सदैव भले विचार करते हैं तो वे विचार उन लोगों को बहुत बड़ा प्रोत्साहन देंगे, जो भलाई करने की बात कुछ २ सोचते हैं। विचारों का कभी नाश नहीं होता और उनकी दौड़ने की शक्ति इतनी तेज है कि कुछ ही क्षण में पृथ्वी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुंच जाते हैं। कोई व्यक्ति सत्य मार्ग पर चलने का विचार करता है, उसी समय आपका किसी अन्य समय में फैलाया हुआ शुभ विचार उसके पास पहुँचता है—उसे दूना उत्साहित कर देता है। फल स्वरूप वह शुभ कर्म करता है और आगे के लिए भी उसी मार्ग

का अभ्यासी हो जाता है। उसके प्रयत्न से अन्य लोगों का ऐसे ही उपकार होता है, यह बेल बढ़ती है और संसार में दैवी सम्पत्ति का विकाश होता है। धर्म की उन्नति होती है, दुनियां में सुख शान्ति बढ़ती है। इतना बड़ा काम आपके उस छोटे से विचार से ही हुआ था, इसलिए उसका बहुत बड़ा पुण्य फल आपको मिलेगा।

स्वयं सदैव शुभ विचार करना, सत्य, प्रेम, न्याय, उदारता, सहानुभूति, दया आदि की भावनायें मन में धारण करना और ऐसे ही विचार दूसरों के मन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भरने का प्रयत्न करते रहना ब्रह्मयज्ञ है। अखण्ड शब्द इसके साथ में इसलिए जोड़ा गया है कि कभी शुभ और कभी अशुभ कभी भले, कभी बुरे विचार करने से उतना लाभ नहीं होता। जैसे भले विचार संसार का कल्याण करते हैं, वैसे ही बुरे विचार अनिष्ट भी करते हैं। कभी इष्ट कभी अनिष्ट, कभी पूरब को कभी पश्चिम को, यह तो कोई अच्छी बात नहीं हुई। इसलिए जो कार्य करना चाहिए, उसमें न तो ढील होनी चाहिए और न उपेक्षा। जैसे हम रोज शौच जाते हैं, स्नान करते हैं, भोजन करते हैं, सोते हैं वैसे स्वयं अच्छे विचार करें और दूसरों को अच्छे अच्छे उपदेश करें। विचारों की अनन्त शक्ति का अनुभव करें और उनके प्रचार करने का जब भी अवसर मिले, तभी प्रयत्न करें। घर का, बाहर का, परिचित, अपरिचित, मित्र शत्रु जो मिले उसमें सत्य प्रेम और न्याय की चर्चा करें। उसे बुराइयां छोड़ने और भलाइयां सीखने की सलाह दें। इस सुधार द्वारा हम उसके साथ सच्चे प्रेम का परिचय दे सकेंगे। किसी को मिठाई दी जाय, तो वह समझेगा कि इसने मुझसे प्रेम किया किन्तु मालूम हम मूर्खता को पहचानता है और वह मिठाई

द्वारा नहीं, विचार के द्वारा उसे ठोस लाभ पहुंचाना चाहता है। दुनियां यज्ञ का महत्व नहीं समझती, न समझे, पर एक आध्यात्म व्यक्ति को इसके अन्दर बड़ा भारी लाभ दृष्टिगोचर होता है। इस अखण्ड ब्रह्म यज्ञ को निरन्तर चालू रख कर प्राणी मात्र के साथ सर्वोच्च कोटि का प्रेम प्रदर्शन करते हुए अपना कल्याण कर सकते हैं।

क्या आपने कभी सोचा है कि मल मूत्र की इस गठरी से बँधने के लिए यह सत्य, शिव, सुन्दर आत्मा क्यों रजामन्द हुआ? जन्म मरण की इन दुखदायी ग्रन्थियों में उलझकर नाना प्रकार की यातनाएं सहने के लिए वह क्यों तत्पर होगया? सुनिए, हड्डियों की इस अपवित्र ठठरी में बँधने के लिए वह इसलिए तैयार हुआ कि परमात्मा की पुण्य सृष्टि में प्रेम का अमृत जो अमृत हिलोरें लेरहा है, उसका रसास्वादन करूं। इन्द्रियां अपने अपने विषयों को दौड़ती हैं, कान मधुर संगीत सुनना चाहते हैं, आंखें सुन्दर दृश्य देखना चाहती हैं, जिह्वा सुस्वादु भोजन चाहती है, स्पर्शेन्द्रिय स्पर्श सुख चाहती है। इसी प्रकार आत्मा का भी एक विषय है, वह प्रेम के अमृत में गोते लगाकर अविरल आनन्द लूटना चाहती है। इसीलिये तो यह स्वर्ग अपवर्गों के सुख को छोड़कर इस भूलोक में अवतार लेती है। रीछ अपनी झाड़ी में से बाहर उस निकलता है, जब उसे शीतल वायु का आनन्द लाभ करने की इच्छा होती है, सर्प अपने बिल से बाहर सांस चाटने के लिए आता है, कोयल बसंत सुख लूटने आती है, खञ्जन पक्षी शरद् ऋतु में देखे जाते हैं। वीरबहूटी कीड़े वर्षा ऋतु में प्रकट होते हैं, अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए ही हर कोई प्रकट होता है। आत्मा का भोजन प्रेम है मछली जल में प्रसन्न रहती है, आत्मा का आनन्द प्रेम में है।

ईश्वर के राजकुमार अपने पिता के राज्य का सौंदर्य देखने के लिए भ्रमण करते हैं, प्राणधारी आत्माएं, परमात्मा की सृष्टि का प्रेम सौंदर्य निहारने आती हैं और इच्छित वस्तु को प्राप्त कर लेने पर अपने स्वस्थान को लौट जाती हैं।

हमारा जीवन बड़ा ही ऊबड़ खाबड़ अनिश्चित बेढंगा संघर्षमय, विपत्ति और असुविधाओं से घिरा हुआ, कष्टपूर्ण, श्रमसाध्य एवं अस्थिर है। यदि इसके अन्तरङ्ग में कोई सुदृढ़ पृष्ठ भूमि न होती तो सचमुच हमारा जीवन घृणित, व्यर्थ एवं त्याज्य बन जाता है। कितने ही प्राणी ऐसा जीवन जीते हैं जिसकी अपेक्षा आत्म-हत्या सुखद है, किन्तु जीवन की समस्त बाधा विपत्तियों के बीच एक स्थिर आकर्षण है, जो जीव और जीवन को चुम्बक जैसे खिचाव से जकड़े रहता है। यह स्थिर सत्य है-'प्रेम'। प्रेम हमारे जीवन का मेरु-दण्ड है जिसके आधार पर संसार में ठहरना और समस्त कार्य कलापों का वहन करना संभव हो सका है। उस प्राणी की मनोभूमि की जरा कल्पना तो कीजिए, जिसका अन्तःकरण प्रेम से सर्वथा शून्य है। ऐसी कल्पना यदि किसी प्राणी की मनोभूमि के बारे में की जा सके तो वह ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी में धधकती हुई दावानल जैसी अनुभव होगी, जिसमें अपने को और दूसरों को भस्म कर देने का ही एकमात्र गुण होगा।

खूंख्वार हिंसक पशु भी प्रेम से रहित नहीं हैं, वे अपने बच्चों से कितना प्यार करते हैं, दम्पत्ति में कितना प्रेम होता है। डाकू, हत्यारे, चोर व्यभिचारी भी किन्हीं अंशों में प्रेम के बिन्दु चाटते रहते हैं अन्यथा वे विस्फोटक बम और तोप के गोले जैसे ही सर्व भक्षी बन जाते। किसी प्राणी में किन्हीं अन्य गुणों का अभाव होना संभव है पर यह हो नहीं सकता कि

उसके अन्तःकरण में किसी के लिए कुछभी प्रेम न हो। जैसे आग का गुण उष्णता है उसी तरह आत्मा का गुण प्रेम है। अविद्या की अँधेरी रात्रि में भी प्रेम के प्रकाश की कुछ किरणें विद्यमान रहती हैं, चाहे वे कितनी ही धुँधली और न्यून क्यों न हों।

निस्संदेह आत्मा प्रेममय है। उसे सुख अपने विषय में ही प्राप्त होता है। मछली को पानी में आनन्द है, इसके अतिरिक्त अन्य कहीं चैन नहीं। प्राणी का मन तब तक शान्ति लाभ नहीं कर सकता जब तक कि वह प्रेम में निमग्न न होजाय। जब तक प्यास नहीं बुझती तब तक हम इधर उधर भटकते हैं और जब ठंढा शीतल जल भर पेट पीने को मिल जाता है तो चित्त ठिकाने आजाता है, संतोष लाभ करके एक स्थान पर बैठ जाते हैं। सर्प का जब पेट भर जाता है तो वह अपने बिल में प्रवेश कर जाता है, बाहर घूमने की उसे कुछ जरूरत नहीं रहती, सीप समुद्र के ऊपर उतराता फिरती है, पर जब स्वाति की बूंद उसमें पड़ जाती है तो मोती को प्राप्त करके समुद्र की तली में बैठ जाती है। आत्मा प्रेम का आनन्द लूटने इस भूमण्डल पर आई है, अपनी प्रिय वस्तु को ढूढने के लिए इधर उधर भटकती फिरती है। जिस दिन उसे इच्छित वस्तुएं प्राप्त हो जांयगी, उसी दिन तृप्ति लाभ कर के अपने परम धाम को लौट जायगी। भव-भ्रमण और मुक्ति का मर्म यही तो है।

हमें बार-बार जन्म इसलिए धारण करना पड़ता है कि प्रेम की प्यास बुझा नहीं पाते। मोह ममता की मृग तृष्णा में मारे मारे फिरते हैं और भव-बन्धन में उलझते फिरते हैं। जिस दिन हमें सद्गुरु की कृपा से यह समझ आजायगी कि जीवन का सार प्रेम है, उस दिन हम शाश्वत प्रेम को अपने अन्तःकरण

में से ढूंढ निकालेंगे। हमारे अन्तःकरण में जिस दिन प्रेम का, भक्ति का अविरल स्रोत फूट निकलेगा, जिस दिन प्रेम नद में आत्मा स्नान कर लेगी जिस दिन प्रेम का सागर हमारे चारों ओर लहरावेगा, उसी दिन आत्मा को तृप्ति मिल जायगी और वह अपने मुक्ति धाम को लौट जायगी।

प्रेम का पथ है—त्याग और सेवा। सच्चा प्रेमी अपने सुखों की तनिक भी इच्छा नहीं करता वरन् जिस पर प्रेम करता है उसके सुख पर अपने को उत्सर्ग कर देता है। लेने का उसे ध्यान भी नहीं आता, देना ही एकमात्र उसका कर्तव्य हो जाता है। जिसके हृदय में प्रेम की ज्योति जलेगी वह गोरे चमड़े पर फिसल कर अपने चमारपन का परिचय न देगा और न व्यभिचार की कुदृष्टि रखकर अपनी आत्मा को पाप पंक में घसीटेगा। वह किसी स्त्री के रूप, रङ्ग, चमक, दमक, हाव, भाव या स्वर कंठ पर मुग्ध नहीं होगा, वरन् किसी देवी में उज्ज्वल कर्तव्य का दर्शन करेगा तो उसके चरणों पर झुककर प्रणाम करेगा। स्त्रियों से प्रेम करने वाले के कमरे में अभिनेत्रियों के अधनंगे चित्र नहीं होंगे वरन् सीता और सावित्री की प्रतिमाएं विराजेंगी। प्रेमी कमर लचकाकर गलियों में छैल चिकनिया बना हुआ न फिरेगा, वह माँ बहिनों को सती साध्वी बनाने के लिए उनमें धर्म प्रेरणा करेगा। उसकी जिह्वा पर आशिक माशूकों के गन्दे अफसाने न होंगे वरन् राम-भरत के प्रेम की चर्चा करता हुआ गद्गद् होजायेगा। प्रेमी का दिल तो बेकाबू हो सकता है पर दिमाग मुट्ठी में रहेगा, वह दूसरों के सुख के लिए आत्म त्याग करने में अपने को बेकाबू करेगा, किन्तु किसी को पतन के मार्ग पर घसीटने का स्मरण आते ही उसकी आत्मा काँप जायगी। इस दिशा में उसका एक कदम

भी आगे नहीं बढ़ सकता। अपने प्रेमपात्र को बदनामी, पतन, दुःख, भ्रम, और नरक में घसीटने वाला व्यक्ति किसी भी प्रकार प्रेमी नहीं कहा जा सकता, वह तो नरक का कीड़ा है जो अपनी विषय ज्वाला में जलाने के लिए दूसरे पक्ष को घसीटता है।

"मैं लूँगा, दूसरे को न दूँगा" की नीति कलह, द्वेष, ईर्षा और असन्तोष की जड़ है, मनुष्य की नीति यह होनी चाहिये कि—"मुझे नहीं चाहिए-आप लीजिए" यही नीति है जिसके आधार पर सुख और शान्ति का होना संभव है। "मैं लूँगा आपको न दूँगा" की नीति को कैकेई ने अपनाकर अयोध्या को नरक बना दिया था। सारी नगरी विलाप कर रही थी। दशरथ ने तो प्राण ही त्याग दिये। राज-भवन मरघट की तरह शोक पूर्ण हो रहा था। राम जैसे निर्दोष तपस्वी को वन-वास ग्रहण करना पड़ा। किन्तु जब "मुझे नहीं चाहिए आप लीजिए" की नीति व्यवहार में आई तो दूसरे ही दृश्य उपस्थित होगये। राम ने राज्याधिकार को त्यागते हुए भरत से कहा बन्धु, तुम्हें राज्य सुख प्राप्त हो, मुझे यह नहीं चाहिये। सीता ने कहा—नाथ यह राज्य भवन मुझे नहीं चाहिए, मैं तो आपके साथ रहूंगी। सुमित्रा ने लक्ष्मण से कहा—

जो पै राम सीय वन जाहीं।
अवध तुम्हार काम कछु नाहीं॥

पुत्र! जहां राम रहें वहीं अयोध्या मानते हुए उनके साथ रहो। कैसा स्वर्गीय प्रसंग है। भरत ने तो इस नीति को और भी सुन्दर ढंग से चरितार्थ किया। उन्होंने राजपाट को लात मारी और भाई के चरणों से लिपट कर बालकों की तरह रोने लगे। बोले—भाई, मुझे नहीं चाहिए इसे तो आप लीजिए।

राम कहते हैं-भरत ! मेरे लिये तो बनवास ही अच्छा है, राज्य सुख तुम भोगो। त्याग और प्रेम के इस सुन्दरी प्रसंग में स्वर्ग छिपा हुआ है, एक परिवार के कुछ व्यक्तियों ने त्रेता को सतयुग में परिवर्तित कर दिया। सारा अवध राज्य सत-युगी रंग में रँग गया। वहां के सुख सौभाग्य का वर्णन करते करते वाल्मीकि और तुलसीदास अघाते नहीं है। इस प्रकार के स्वर्गीय प्रसंग, जीवन को सच्ची तृप्ति में सराबोर कर देने की क्षमता प्रेम में ही है और उसे ही इस भूलोक का पारस कहा जा सकता है।

आप अपने कुटुम्बियों से, मित्रों से, परिचितों से, अपरिचितों से प्रेम किया कीजिए, सब के लिए उचित आदर, स्नेह, उदारता और आत्मीयता का भाव रखा कीजिए। किसी से लड़ना पड़े तो भी आत्मीयता का उदार भाव लेकर लड़िये। अपने निकटवर्ती वातावरण में प्रेम की सुगन्ध फैलाइए, स्नेह नम्रता और सज्जनता के वचन बोलिए ऐसे ही विचार रखिए, ऐसे ही आचरण कीजिए। आप का मन, वचन और कर्म प्रेम से सराबोर होना चाहिए। सद् व्यवहार आप की प्रधान नीति हो, मधुर भाषण आप का स्वभाव हो, सद्भाव आपका मत हो, आपका जीवन प्रेम, भ्रातृभाव, सदाचार, ईमानदारी, सरलता और आत्मीयता की दिशा में अग्रसर हो रहा हो। इस ओर जितनी जितनी आप उन्नति करते जावेंगे उतने ही पारस पत्थर के निकट पहुँचते जावेंगे।

लोहे को सोना बनाने के तुच्छ प्रलोभन पर से अपना ध्यान हटाइए, लोहे जैसे कलुषित हृदयों को स्वर्ण सा चमक-दार बनाने की विद्या सीखिये। यह विद्या सच्ची रसायनी विद्या है, यह पारस सच्चा पारस है। जिसके पास यह है उसके पास सब कुछ है।

मर्त्यलोक का कल्पवृक्ष

सुर लोक में एक कल्पवृक्ष है। इस कल्पवृक्ष में ऐसा गुण है कि उसके नीचे बैठकर जैसी कुछ इच्छा की जाय वह पूरी हो जाती है। जैसे कोई आदमी उस वृक्ष के नीचे इच्छा करे कि मुझे एक सहस्र अशर्फी मिल जांय तो उसे अशर्फियां मिल जांयगी। कोई दूसरी वस्तु चाहे तो वह भी उसे प्राप्त होगी। ऐसे कल्पवृक्ष को मानव जाति बहुत दिनों से इच्छा करती चली आ रही है। जिस दिन से इस बात का पता चला कि इस विश्व में कल्पवृक्ष का अस्तित्व है उसी दिन से मर्त्य-लोक के निवासी उसका पता लगाने और प्राप्त करने की कोशिश करने लगे। कारण यह है कि हर एक इच्छा को पूरा करने की, हर एक मनचाही वस्तु को देने की शक्ति जिस में है ऐसे बहु-मूल्य पदार्थ की आकांक्षा भला कौन न करेगा? सुख प्राप्त करने के लिए समस्त विश्व लालायित है जिस कल्पवृक्ष के द्वारा सुख की इच्छा आसानी से पूरी हो सकती है उसे चाहना, उसकी उत्कट अभिलाषा करना, स्वाभाविक है। कल्पवृक्ष की खोज करते हुए मनुष्य जाति को लाखों करोड़ों वर्ष बीत गये, परन्तु अभी तक वह इस रूप में कहीं भी नहीं पाया जा सका। जैसा कि सुरलोक वाले कल्पवृक्ष के बारे में पुराणों में बताया गया है।

आध्यात्म विद्या के वैज्ञानिकों ने इस कल्पवृक्ष को ढूँढ निकाला है और प्रमाणित कर दिया है कि यह सर्व सुलभ है। इसे जो चाहे सो आसानी से पा सकता है। सुरलोक की

वस्तुऐं जब मर्त्य लोक में आती हैं तो उनका रूप कुछ ऐसा हो जाता है कि हमारी आखों से दिखाई नहीं पड़तीं या यों कहिये कि स्वर्ग लोक की चीजों को हमारे चर्म-चक्षु ठीक उसी रूप से नहीं देख पाते। देवता लोग अपने लोक में शरीर सहित रहते होंगे किन्तु मर्त्यलोक में कोई देवता शरीर सहित विचरण करता हुआ नहीं देखा गया। देवता लोग मर्त्यलोक में आते जाते हैं परन्तु वे आंखों से दिखाई नहीं पड़ते। इसी प्रकार कल्पवृक्ष हमारी दुनियाँ में है तो सही परन्तु उसे आखों से नहीं देखा जा सकता। परन्तु वह अदृश्य होते हुए भी अपने सम्पूर्ण गुणों से युक्त है, जो कार्य उस के द्वारा सुरलोक में होता है वही कार्य इस लोक में भी हो सकता है। अदृश्य होने के कारण उसकी शक्ल देखने से हम जरूर वंचित रहते हैं परन्तु उसके द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों को वही प्रकार पा सकते हैं जैसे कि देवता लोग पाते हैं।

मर्त्यलोक का कल्पवृक्ष है—'तप'। तप का अर्थ है-कष्ट सहन करना, परिश्रम एवं प्रयत्न करना। प्राचीन काल में अनेक व्यक्तियों ने तप करके वरदान प्राप्त किए थे। उन वरदानों के बल से वे तपस्वी लोग बड़ी बड़ी चमत्कारी सिद्धियाँ प्राप्त कर चुके हैं। पौराणिक कथाओं से प्रतीत होता है कि देवताओं को प्रसन्न करने का एक मात्र उपाय तप था। तपस्वी लोगों से ही वे सन्तुष्ट होते थे। क्योंकि ऐश्वर्य को भोगने का अधिकारी केवल तपस्वी-परिश्रमी ही है। खीर और मोहनभोग वही पचा सकता है जिसकी जठराग्नि प्रदीप्त हो, मन्दाग्नि वाले को गरिष्ठ भोजन देना तो मानो उसके मारने का प्रबन्ध करना है। कहते हैं कि सिंहिनी का दूध स्वर्ण के पात्र में दुहा जाता है, दूसरे पात्र में इतनी शक्ति नहीं होती कि उसमें वह दूध रह सके।

इसी प्रकार जो तपस्वी नहीं है उसमें ऐश्वर्य को धारण करने की क्षमता नहीं होती। ऐसे अयोग्य आदमियों को यदि कुछ मिल जाय तो वे उसे पाकर करीब करीब पागल हो जाते हैं। बच्चों के हाथ में बन्दूक और बारूद पड़ जाय तो वे खेल खेल में ही अपना या दूसरों का भयङ्कर अनिष्ट करलें। अतएव परमात्मा ने यह सुनिश्चित नियम बना दिया है कि सम्पदाऐं उन्हीं के पास रहें जो उन्हें रखने के अधिकारी हैं। अधिकारी होने की सब से प्रधान कसौटी यह है कि उसमें पुरुषार्थ है या नहीं? इच्छित वस्तु को प्राप्त करने योग्य प्रयत्नशीलता उत्कट अभिलाषा रखता है नहीं? देवता लोग जब इस बात को परख कर लेते हैं तो उसे वह वस्तु खुशी खुशी दे देते हैं जिसका वह अधिकारी है।

भागीरथजी तप करके गङ्गा को मर्त्यलोक में लाये, पार्वतीजी ने तप करके शिव को वर रूप में पाया ध्रुव ने तप करके अटल राज्य पाया, एक नहीं अनेकानेक प्रमाण इस बात के मौजूद हैं कि तप से ही सम्पदा मिलती है। मनोवांछाऐं पूर्ण करने का एक मात्र साधन तप ही है—परिश्रम एवं प्रयत्न ही है। क्या देव क्या असुर जितने भी ऐश्वर्य पाया है, वरदान उपलब्ध किये हैं तप के द्वारा पाये हैं। अनन्त सम्पदाओं का ढेर अपने चारों ओर बिखरा पड़ा हो तो भी कोई उसे तप बिना नहीं पा सकता। समुद्र के अन्दर अतीत काल से अनेक रत्न छिपे पड़े थे। उन का अस्तित्व किसी पर प्रकट न था किन्तु जब देवता और असुरों ने मिलकर समुद्र मन्थन किया तो उसमें से चौदह अमूल्य रत्न निकले। यदि मन्थन न किया जाता तो चौदह क्या चौथाई रत्न भी किसी को न मिलता। श्रम, परिश्रम और कष्ट सहन करने से ही किसी ने कुछ प्राप्त

किया है। अकस्मात् छप्पर फड़ कर मिल जाने के कुछ अपवाद कहीं कहीं देखे और सुने जाते हैं परन्तु यह इतने कम होते हैं कि उन्हें सिद्धान्त रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। पूर्व जन्मों का सञ्चित पुण्य एक दम कहीं प्रकट होकर कुछ सम्पदा अकस्मात उपस्थित करदें ऐसा होना असम्भव नहीं है, कभी कभी ऐसा हो जाता है कि किन्हीं व्यक्तियों को बिना परिश्रम के भी कुछ चीज मिल जाती है परन्तु इसे भी मुफ्त का माल नहीं कहा जा सकता। पूर्व सञ्चित पुण्य भी परिश्रम और कष्ट सहन द्वारा ही प्राप्त हुए थे। इस भाव से अकस्मात् प्राप्त होने वाले लाभों में भी अप्रत्यक्ष रूप से परिश्रम ही मुख्य होता है।

परमात्मा की इस सुव्यवस्थित रचना में सब कार्य नियमित रूप से, व्यवस्था पूर्वक होरहे हैं। इसमें 'पो पो बाई' का राज नहीं है जहां से हर कोई लूट का मूसल उठा ले जावे। यहां अनियमित रूप से किसी को एक कण भी नहीं मिलता। कबीर की एक अनुभव पूर्ण वाणी है कि—

राम झरोखे बैठकर सबको मुजरा लेंय।
जैसी जाकी चाकरी तैसो ताको देंय॥

झरोखे में बैठे हुए राम सब को जाच पड़ताल करते हैं, जिनका जितना परिश्रम है उसको उतना ही देते हैं। संसार के बाजार में "इस हाथ दे उस हाथ ले" की नीति चल रही है। जो जितना देता है वह उतना पाता है। उद्योगी पुरुष सिंहों को लक्ष्मी प्राप्त होती है और निखट्टू पुरुष दैव दैव—भाग्य भाग्य—बकते झकते हुए हाथ मलते रहते हैं।

तप करने से, एक निष्ठा के साथ विवेक पूर्ण प्रयत्न करने से, बड़े बड़े दुर्लभ पदार्थ प्राप्त होते हैं। फावड़े के बल से वीर फरिहाद ने पहाड़ तोड़कर एक लम्बी नहर खोद निकाली।

कालिदास ने भी जवानी में ओलम बारखड़ी सीखना शुरू किया और भारत के चमकते हुए साहित्यिक सितारे कुछ ही दिनों में बन गये। एक नहीं असख्य उदाहरणों को हम अपने आस पास फैला हुआ देख सकते हैं। तपाने से सोना चमकता है, माँजने से धातुऐं निखरती हैं, घिसने से हथियार तेज होता है, रगड़ने से आग पैदा होती है। परिश्रम और प्रयत्न से मनुष्य के भीतर छिपी हुई अनेकानेक शक्तियां और योग्यताऐं प्रस्फुटित होती हैं फिर उनके द्वारा वह सब सम्पदाएं प्राप्त हो जाती हैं जो कि कल्पवृक्ष द्वारा प्राप्त होनी चाहिए।

यदि अपने घर कपड़े शरीर आदि को सुन्दर देखना चाहते हैं तो उनको सफाई में जुट जाइए। धूलि में मिलकर मकान को लीप पोत डालिए, कपड़ों की धुलाई कर डालिये, टूट फूट को ठीक कीजिए, सजावट में परिश्रम कीजिए, बस आपकी चीजें स्वच्छ, सुन्दर और आकर्षक बन जावेगी। शारीरिक स्वास्थ्य को अच्छा बनाना चाहते हैं तो व्यायाम मालिश आसन संयम आदि के लिये मेहनत कीजिए थोड़े ही दिनों में शरीर बलवान होने लगेगा। मान, पैसा, कीर्ति, नेतृत्व, मनोबल, स्वर्ग, मुक्ति, सुख शान्ति जो कुछ भी आप चाहते हैं उसके लिए तप कीजिए। कठिन प्रयत्न, एकनिष्ठा पूर्ण प्रयत्न, अटूट प्रयत्न !! सफलता का यही मूलमंत्र है। आजके कष्टों को भविष्य की स्वर्णिम आशा पर निछावर कर देना तप है। यह तप प्रत्यक्ष फलदायक है। सिद्धियां तपस्या की चेरी हैं। पुरुषार्थी के गले में विजय माला पहनने का ईश्वरीय सुनिश्चित विधान है उसे कोई नहीं पलट सकता, कोई नहीं बदल सकता। प्रयत्न करने वाले को आज नहीं तो कल मनोवांछित वस्तु मिलकर रहेगी। जो अपनी मदद आप करता है परमात्मा उसकी मदद जरूर करता है।

मुफ्त में मन चाहा माल लूटने की सुविधा देने वाला यदि कोई कल्पवृक्ष होता भी हो तो वह सर्व साधारण के लिये कुछ लाभदायक न होगा वरन् हानिकर ही सिद्ध होगा। क्योंकि लूट के माल में मनुष्य को बुद्धि अव्यवस्थित हो जाती है। नाना प्रकार के उचित अनुचित अनियंत्रित सङ्कल्पों का ऐसा जमघट उसमें जमा होने लगता है,जिसका परिणाम सर्वनाश ही पा निकलता है। कहते हैं कि एक बार कोई आदमी कल्पवृक्ष के पास पहुंच गया। उसने इच्छा की कि शीतल जल पीने का होता तो बड़ा अच्छा था। इच्छा करने की देर थी कि ठंडा जल सामने हाजिर होगया। अब उसने स्वादिष्ट भोजन चाहे, वह भी हाजिर। इसी प्रकार उसने क्रमश पलङ्ग, बिस्तर, दास, दासी, महल, खजाने, राजपाट, मांगे वह सब भी मिले। अब जब कि सम्पत्तियों की ओर से मन भर गया तो उसका चित्त दूसरी ओर को चला, उसे भय लगा कि कहीं कोई हिंसक जन्तु न आ जाय, सोचने की देर थी दहाड़ते हुए सिंह दपता सामने आ खड़े हुए। अब वह भय के मारे काँपने लगा और और मन ही मन ऐसा डरने लगा मानों यह सिंह अभी मुझे खाये जा रहा है। यह विचार आया ही था कि सिंह ने उसे धर दबोचा और अपने पेट में पहुंचा दिया। बिना उचित परिश्रम और योग्यता के कुछ मिलने का विधान न्यायकारी परमात्मा ने अपने सुव्यवस्थित सृष्टि में नहीं रखा है। यदि किसी को किसी प्रकार ऐसा कुछ मिल भी जाय तो वह उसके पास ठहरता नहीं वरन् असह्य पीड़ाऐं देता हुआ वह सब वैसे ही चला जाता है जैसा कि आया था।

यह बात भली भांति हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि "शक्ति बिना मुक्ति नहीं।" गरीबी से, गुलामी से, बीमारी

से, बेईमानी से, भव बाधा से, तब तक छुटकारा नहीं मिल सकता, जब तक कि शक्ति का उपार्जन न किया जाय। आर्य जाति सदा से ही शक्ति का महत्व स्वीकार करती रही है और इसने शक्ति पूजा को ऊँचा स्थान दिया है, अनेक महापुरुषों ने तो शक्ति को ही सर्वोपरि धर्म मान कर 'शाक्त धर्म' की स्वतन्त्र स्थापना की। पहले यह वैदिक धर्म का ही एक अङ्ग था, पीछे मद्य मांस की वासनाओं की छाया इस पर पड़ने का कारण तिरस्कृत बन गया। शक्ति की अधिष्ठात्री देवी को दुर्गा, देवी, चन्डी, काली, भवानी आदि नामों से पुकारा जाता है, यह असुरों से धर्म युद्ध करती है और उनका रक्त पान करके प्रसन्न होती है।

एक महात्मा का कथन है—Right is might, therefore might is Right. अर्थात् 'सत्य ही शक्ति है, इसलिए शक्ति ही सत्य है।' अविद्या, अन्धकार, और अनाचार का नाश सत्य के प्रकाश द्वारा ही हो सकता है। शक्ति की विद्युत धारा में भी वह शक्ति है कि वह मृत व्यक्ति या समाज की नसों में प्राण सञ्चार करे और उसे सशक्त एवं सतेज बनाये। शक्ति एक तत्व है, जिसको आह्वान करके जीवन के विभिन्न विभागों में भरा जा सकता है और उसी अङ्ग में तेज एवं सौन्दर्य का दर्शन किया जा सकता है शरीर में शक्ति का आविर्भाव होने पर देह कुन्दन जैसी सुगंधित एवं अष्टधातु सी निरोग बन जाती है, पहलवान शरीर का सौन्दर्य देखते ही बनता है। मन में शक्ति का उदय होने पर साधारण से मनुष्य कोलम्बस, लेनिन, गांधी, सनयातसेन जैसी हस्ती बन जाते हैं और ईसा, बुद्ध, राम, कृष्ण, मुहम्मद के समान असाधारण कार्य अपने मामूली शरीरों के द्वारा ही करके दिखा देते हैं। बौद्धिक बल की जरा सी चिनगारियां बड़े बड़े तत्व ज्ञानों की रचना करती हैं और वर्त-

मान युग के वैज्ञानिक आविष्कारों की भाँति चमत्कारिक वस्तुओं के अनेकानेक निर्माण कर डालते हैं, अधिक धन का थोड़ा सा प्रसाद हमारे आसपास चकाचौंध उत्पन्न कर देता है। जिन सुख साधनों के स्वर्ग लोक में होने की कल्पना की गई है, पैसे के बल से वे इस भूलोक में भी प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं और संगठन—बल, अहा! वह तो गजब की चीज है। "एक और एक मिलकर ग्यारह" हो जाने की कहावत पूरी सचाई से भरी हुई है। दो व्यक्ति यदि सच्चे दिल से मिल जावें, तो उनकी शक्ति ग्यारह गुनी हो जाती है। सच्चे कमजोर थोड़ी संख्या में भी आपस में मिल कर काम करें, तो वे आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं। कलियुग में तो संघ को ही शक्ति कहा गया है। निस्सन्देह गुटबन्दी, गिरोहबन्दी, एका, मेल, संगठन एक जादू है, जिसके द्वारा सम्बन्धित सभी व्यक्ति एक दूसरे को कुछ देते हैं और उस आदान प्रदान से उनमें से हर एक को बल मिलता है।'

आत्मा की मुक्ति भी ज्ञान शक्ति एवं साधना शक्ति से ही होती है, अकर्मण्य और निर्बल मन वाला व्यक्ति आत्मोद्धार नहीं कर सकता है। लौकिक और पारलौकिक सब प्रकार के दुख-द्वन्द्वों से छुटकारा पाने के लिये शक्ति की ही उपासना करनी पड़ेगी। निस्सन्देह शक्ति के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती, अशक्त मनुष्य तो दुख-द्वन्द्वों में ही पड़े पड़े बिलबिलाते रहेंगे और कभी भाग्य को, कभी ईश्वर को, कभी दुनियां को, दोष देते हुये झूँठी विडम्बना करते रहेंगे। जो व्यक्ति किसी भी दिशा में महत्व प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि अपने इच्छित मार्ग के लिये शक्ति संपादन करें।

(१) सच्ची लगन और (२) निरन्तर प्रयत्न यही दो

महान् भावनाएं हैं, जिनसे भगवती शक्ति को प्रसन्न करके उनसे इच्छित वरदान प्राप्त किया जा सकता है। आपने जो भी अपना कार्य क्रम बनाया हो, जो भी जीवनोद्देश्य बनाया हो, उसे पूरा करने में जी जान से जुटाइए! सोते जागते उसी के सम्बन्ध में सोच विचार करते रहिए और आगे का रास्ता तलाश करते रहिए। परिश्रम! परिश्रम!! और परिश्रम!!! आपकी आदत में शामिल होना चाहिए। मत सोचिये कि अधिक काम करने से आप थक जायंगे, वास्तव में परिश्रम एक स्वय-चालक-शक्ति है, जो अपनी बढ़ती हुई गति के अनुसार कार्य क्षमता उत्पन्न कर लेती है। उदासीन, आलसी और निकम्मा व्यक्ति दो घन्टा काम करके एक पर्वत पार कर लेने की थकान अनुभव करता है, किन्तु उत्साही, उद्यमी और अपने कार्य में दिलचस्पी लेने वाले व्यक्ति सोने के समय को छोड़कर अन्य सारे समय लगे रहते हैं और जरा भी नहीं थकते। सच्ची लगन, दिलचस्पी, रुचि और झुकाव एक प्रकार का डायनुमा है, जो काम करने के लिए क्षमता की विद्युत शक्ति हर घड़ी उत्पन्न करता रहता है।

स्मरण रखिए कि आपका कोई भी मनोरथ क्यों न हो, वह शक्ति द्वारा ही पूरा हो सकता है। इधर उधर बगलें झांकने से कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, दूसरों के भरोसे सिर भिगोने पर तो निराशा ही हाथ लगती है। अपने प्रिय विषय में सफल होने के लिये अपने पांवों पर उठ खड़े हूजिये, उसमें सच्ची लगन और दिलचस्पी पैदा कीजिये, एवं मशीन की तरह जो तोड़ परिश्रम के साथ काम में जुट जाइये, अधीर मत हूजिए, शक्ति की देवी आपके साहस की बार-बार परीक्षा लेगी, बार-बार असफलता और निराशा की अग्नि में तपायेगी, तथा असली, नकली की जांच करेगी, यदि आप कष्ट कठिनाई, असफलता, निराशा,

विलम्ब आदि की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए, तो वह प्रसन्न होकर प्रकट होगी और इच्छित वरदान वरन् उससे भी कई गुना अधिक फल प्रदान करेगी।

एक बार, दो बार नहीं, हजार बार इस बात को गिरह बाँध लीजिए कि 'शक्ति के बिना मुक्ति नहीं' दुःख दारिद्र की गुलामी से छुटकारा शक्ति उपार्जन किये बिना कदापि नहीं हो सकता। आप अपने लिए कल्याण चाहते हैं, तो उठिए, शक्ति को बढ़ाइए, बलवान बनिए, अपने अन्दर लगन कर्मण्यता और आत्म-विश्वास पैदा कीजिए जब आप अपनी सहायता खुद करेंगे, तो ईश्वर भी आपकी सहायता करनेके लिए दौड़ा २ आवेगा।

सिंह भूखा हुए मांस की ओर मुँह उठा कर नहीं देखता, क्या हम तुच्छ विषय भोगों की वेदी पर अपनी श्रेष्ठता को बलिदान कर देंगे? एक सम्राट् क्या कभी भिखमंगों के से आचरण करता है? हमें यह शोभा नहीं देता कि ऐसे कामों पर उतारू हों जो मनुष्यता को कलङ्कित करते हैं। हंस प्यासा मर जायगा पर दूध में से पानी छाँट देने का गुण न छोड़ेगा, हमें न्याय और अन्याय का अन्तर करके केवल न्याय को स्वीकार करना होगा, ताकि हमारी महत्ता सुरक्षित रहे। चकवा वर्ष दिन तक प्यासा मरता है, पर सूखे हुए गले को स्वाँति के जल से ही भिगोता है। हम गरीबी का जीवन बितावेंगे, कष्ट सहेंगे पर अन्याय से उपार्जित धन ग्रहण न करेंगे। भौंरा सुगन्धित पुष्पों के आस पास रहता है, हम भी सज्जनों और सद् विचारों के बीच अपना स्थान बनावेंगे। मानव जीवन की महत्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ हमें इस बात के लिए बाध्य करती हैं, कि ऐसा जीवन जियें जो जीने योग्य हो, जिससे हमारे पद के गौरव पर कलङ्क न आवे।

धिक्कार है इस जिंदगी पर जो मक्खियों की तरह पापों की विष्टा के ऊपर भिनभिनाने में और कुत्ते की तरह विषय भोगों की जूठन चाटने में व्यतीत होती है। उस बड़प्पन पर धिक्कार है, जो खुद खजूर की तरह बढ़ते हैं पर उनकी छाया में एक प्राणी भी आश्रय नहीं पा सकता। सर्प की तरह धन के खजाने पर बैठ कर चौकीदारी करने वाले लालची किस प्रकार सराहनीय कहे जा सकते हैं? जिनका जीवन तुच्छ स्वार्थों को पूरा करने की उधेड़ बुन में निकल गया; हाय, वे कितने अभागे हैं, इस दुर्लभ देह रूपी बहुमूल्य रत्न, इन दुर्बुद्धियों ने, काँच और कंकड़ के टुकड़ों के बदले बेच दिया, किस मुख से वे यह कहेंगे कि हमने जीवन का सदुपयोग किया। इन कुबुद्धियों को तो अन्त में पश्चात्ताप ही पश्चात्ताप प्राप्त होगा, एक दिन उन्हें अपनी भूल प्रतीत होगी, पर उस समय अवसर हाथ से चला गया होगा और शिर धुन धुन कर पछताने के अतिरिक्त और कुछ हाथ न रहेगा।

मनुष्यो! जियो, और जीने योग्य जीवन जियो, ऐसी जिन्दगी बनाओ जिसे आदर्श और अनुकरणीय कहा जा सके। विश्व में अपने ऐसे पद चिन्ह छोड़ जाओ जिन्हें देख कर आगामी सन्तति अपना मार्ग ढूंढ सके। आपका जीवन सत्य से, प्रेम से, न्याय से, भरा हुआ होना चाहिए। दया, सहानुभूति, आत्म निष्ठा, संयम, दृढ़ता, उदारता, आपके जीवन के पाद होने चाहिए। शारीरिक और 'मानसिक बल का संचय और उसका सदुपयोग' यह प्रथम कर्तव्य है, जिस की ओर हर घड़ी दृष्टि रखना चाहिए बिना इसके जीवन 'जीवन' नहीं हो सकता।

न केवल स्व जीवन स्वयं जियो, वरन् दूसरों को भी

वैसा ही जीवन जीने दो। परमात्मा का आत्मा के प्रति आदेश है कि "जिओ और जीने दो" अपनी निर्बलता, वासना, स्वार्थपरता एवं कुभावनाओं को हटा कर गौरवपूर्ण पद प्राप्त करो और सिर ऊँचा उठा कर जीने योग्य जिन्दगी जिओ और उस सात्विक जीवन की शक्ति का प्रयोग दूसरे निर्बलों को शक्ति प्रदान करने में करो। यह प्रकृया अत्यन्त ही नीच श्रेणी की होगी कि तुम स्वयं तो ऊंचे उठो पर दूसरों को नीचा दबाओ। स्वयं स्वतन्त्रता की इच्छा करो और दूसरों को बन्धनों में जकड़ो यह तो अपने बल का दुरुपयोग करना होगा। दूसरों की छाती पर खड़े होकर ऊपर बढ़ने की वासना इतनी सत्यानाशी और नारकीय है कि इसके द्वारा विश्व का बहुत भारी अहित हुआ है। बलवान व्यक्ति जब जालिम का रूप धारण करता है, तो वह प्रभु की इस सुरम्य वाटिका में निर्दय कुल्हाड़े का काम करता है। ऐसा क्रूर जीवन पिशाच ही बना सकता है, मनुष्य के लिए वैसा सभव नहीं है।

जीने दो, दूसरों को भी स्वतन्त्रता पूर्वक जीने दो। जो भूले भटके हों उन्हें राह पर लाओ, पर खबरदार किसी के मूल भूत अधिकारों पर हस्तक्षेप मत करो। अमुक व्यक्ति अमुक परिवार में उत्पन्न हुआ है, इसलिए उसके मानवोचित अधिकार दबाये जाँय यह सोचना बड़ी ही निर्दयता होगी। एक सच्चा मनुष्यता का उपासक यह नहीं कह सकता कि स्त्रियों पर पुरुषों की अपेक्षा अधिक बन्धन लगाने चाहिये। शूद्रों के मानवोचित अधिकारोंका अपहरण पाषाण हृदयोंमे होना सभव है। सत्य का प्रेमी न्याय का उपासक अपने अंतःकरण की ग्रंथियों को खोल डालता है। वह स्वय उच्च जीवन जीता है, इसलिए दूसरों के जीवन की भी कद्र करता है। तुच्छ आदमी स्वयं बड़ी हुई

नालियों की रूढ़ियों में भुजभुनाता हुआ गर्हित जीवन बिताता है, इसलिए वह दूसरों को भी टांग पकड़ कर नारकीय पराधीनता में सड़ने के लिए पीछे घसीटता है। वह दूसरों को तुच्छ समझता है, क्योंकि स्वयं तुच्छता मे पड़ा हुआ है, वह दूसरों से घृणा करता है, क्योंकि उसने स्वयं अपनी आत्मा को घृणित बना रखा है।

आप टुच्चे मत बनिये, आप बढ़ रहे हैं, उन्नति के पथ पर चल रहे हैं, इसलिए दूसरों को भी बढ़ने दीजिये। आप अपनी आत्मा को मुक्त बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं, इसलिए दूसरों को भी स्वतन्त्रता का आनन्द लेने दीजिए। स्वयं बढ़िए और दूसरों को बढ़ने के लिये प्रोत्साहित कीजिये। आप महान् बनिये दूसरों में महानता लाने का प्रयत्न करिए। पाठको! तुम ईश्वर के राजकुमार हो, इसलिये वैसा जीवन जिओ जो राजकुमारों के योग्य है। संसार के दूसरे प्राणी तुम्हारे भाई हैं, इसलिये उनके साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा एक भाई दूसरे के साथ करता है। जिओ, प्रसन्नता पूर्वक जिओ, पर दूसरों को भी उसी तरह जीने दो।

भूलोक का कल्पवृक्ष—तप है। उत्साह, स्फूर्ति, लगन, धुन, परिश्रम, प्रयत्न, साहस, धैर्य दृढ़ता और कठिनाई को देखकर विचलित न होना यह तप के लक्षण हैं। जिसने तप द्वारा इन गुणों को पैदा किया, अपने मनोवांछित तत्व को पाने के लिये खून पसीना बहाना सीखा, वह एक प्रकार का सिद्ध है। कल्पवृक्ष की सिद्धि उसके आगे हाथ बांधे खड़ी रहती है। ऐसे आदमी जो चाहते हैं कर गुजरते हैं जो चाहते हैं प्राप्त कर लेते हैं। नेतृत्व, लोक सेवा, धन उपार्जन, प्रतिष्ठा, ज्ञान, भोग आदि सम्पदाएं पाने की जिनके मनमें लालसाएं उठती हों

पर जीवन की गुत्थियों को सुलझाना चाहिए, उसी के अनुसार कार्यक्रम बनाना चाहिए। जब इस प्रकार का हमारा कोण निश्चित होजाता है तो जीवन अत्यन्त पवित्र, निर्मल, निष्पाप शान्तिदायक एवं आनन्दमय होजाता है। यही अमृत है।

प्रेम की दृष्टि से सबको देखना, आत्मीयता, उदारता, सहानुभूति, सेवा, क्षमा, दया, सुधार, कल्याण परमार्थ, त्याग के भाव रखकर लोगों से व्यवहार करना ऐसा उत्तम कार्य है जिसकी प्रतिक्रिया बड़ी उत्तम होती है, जो भी अपने संपर्क में आता है वही इच्छानुवर्ती, आज्ञाकारी, प्रशंसक, सहायक और सेवक बन जाता है। प्रेम मनुष्य जीवन का पारस है, इसका स्पर्श होते ही नीरस, शुष्क, तुच्छ व्यक्तियों में भी महानता उद्भूत होने लगती है। रोती हुई दुनियाँ को हँसती सूरत में बदल देने का जादू प्रेम में ही है। इसीलिए उसे पारस कहते हैं।

परिश्रम से, उद्योग से, कष्ट सहन से, अध्यवसाय से कठिन से कठिन लक्ष्य तक मनुष्य पहुंच जाता है। तप से सारी संपदाऐ मिलती हैं। शक्ति संचय, परिश्रम, उत्साह, दृढ़ता लगन यही तप के लक्षण हैं। जिसे तप की आदत है कल्पवृक्ष उसकी मुट्ठी में है उसकी कोई इच्छा अधूरी न रहेगी वह जो चाहेगा सोही प्राप्त कर लेगा।

मुद्रक—पं० गिरधरलाल शर्मा, लक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस, मथुरा।

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें।

यह बाजारू किताबें नहीं हैं, इनकी एक एक पंक्ति के पीछे गहरा अनुभव और अनुसंधान है।

[१]	मैं क्या हूं?	।=)
[२]	सूर्य चिकित्सा विज्ञान	।=)
[३]	प्राण चिकित्सा विज्ञान	।=)
[४]	परकाया प्रवेश	।=)
[५]	स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या	।=)
[६]	मानवीय विद्युत के चमत्कार	।=)
[७]	स्वरयोग से दिव्य ज्ञान	।=)
[८]	भोग में योग	।=)
[९]	बुद्धि बढ़ाने के उपाय	।=)
[१०]	धनवान बनने के गुप्त रहस्य	।=)
[११]	पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि	।=)
[१२]	वशीकरण की सच्ची सिद्धि	।=)
[१३]	मरने के बाद हमारा क्या होता है	।=)
[१४]	जीव जन्तुओं की बोली समझना	।=)
[१५]	ईश्वर कौन है? कहां है? कैसा है?	।=)
[१६]	क्या धर्म? क्या अधर्म?	।=)
[१७]	गहना कर्मणोगतिः	।=)
[१८]	जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश	।=)
[१९]	पञ्चाध्यायी धर्म नीति शिक्षा	।=)
[२०]	शक्ति संचय के पथ पर	।=)
[२१]	आत्म गौरव की साधना	।=)
[२२]	प्रतिष्ठा का उच्च सोपान	।=)
[२३]	मित्र भाव बढ़ाने की कला	।=)
[२४]	आन्तरिक उल्लास का विकास	।=)